अध्याय-1

प्रस्तावना

प्रस्तावना

पूर्वी उत्तर प्रदेश में अवस्थित जनपद गाजीपुर की कुल जनसंख्या 30,49,337 (2001) है, जिसमें 15,44,446 पुरुष एवं 15,04,841 महिला हैं। यह लगभग 3,32,209 हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यहाँ की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है और गाँवों में निवास करती है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल से 2,63,216 हेक्टेयर क्षेत्रफल में ही कृषि कार्य किया जा सकता है, जो जनपद के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 79 प्रतिशत है। जनपद के क्षेत्रफल का एक प्रतिशत से अधिक (4836 हेक्टेयर) भू–भाग ऊसर है तथा लगभग इतनी ही(3585 हेक्टेयर) भूमि में उद्यान एवं पेड़–पौधे पाये जाते हैं। यहाँ नयी तकनीकी एवं शोध केन्द्रों के अभाव के कारण कृषि कार्य परम्परागत तरीके से ही संचालित होते हैं जिससे गाजीपुर कृषि एवं खाद्यान्न के मामले में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। कृषि प्रधान जनपद गाजीपुर कृषि क्षेत्र में अत्यन्त पिछड़े होने के कारण गरीबी, बेरोजगारी, एवं भुखमरी की मार झेलता रहा है। यहाँ बाढ़, सूखा एवं प्राकृतिक प्रकोपों के कारण स्वास्थ्य समस्यायें भी प्रायः बनी रहती हैं, जिससे गाजीपुर के ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण न्यूनता परिलक्षित होती है।

गाजीपुर में कुपोषण की समस्या बहुत पुरानी है जिसका समाधान आजादी के 60 वर्ष बाद भी नहीं हो पाया है। यहाँ करीब 45 फीसदी बच्चे एवं 33 प्रतिशत महिलायें कुपोषण की शिकार हैं। महिलाओं में तो आधी आबादी एनीमिया से पीड़ित है, जबकि खून की कमी से पीड़ित बच्चों की संख्या 75 प्रतिशत है। अधिकतर परिवारों में आज भी लड़कियों एवं महिलाओं के स्वास्थ्य की घोर उपेक्षा

होती है। प्राचीन काल से ही महिलाओं को भोजन का ज्यादा भाग प्रायः पति और पुत्रों के खिलाने की सीख दी जाती है। जिसके कारण घर की महिला परिवार के पुरुष सदस्यों को खिलाने के बाद खाना खाती हैं। कई बार तो उनके हिस्से बचा–खुचा या बासी खाना ही आता है और वे इसी में सन्तुष्ट हो लेती हैं। गाँवों में लड़के–लड़की की खुराक में भी कुछ लोग भेद करते पाये जाते हैं जो महिलाओं के कुपोषण का एक बड़ा कारण होता है।

भारत लगभग एक अरब जनसंख्या वाला एक विशाल देश है, जहाँ विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों को मानने वाले लोग रहते हैं। इस देश में धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं, परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों की बाहुल्यता है। भारत का विकासशील देशों में प्रमुख स्थान है, परन्तु यह कई यूरोपीय देशों की तुलना में आर्थिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ है। यही नहीं भारत बहुत सारे अंधविश्वासों, भ्रान्तिपूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मान्यताओं की जंजीर से जकड़ा हुआ है जिसके कारण यहाँ बहुत सारी आहारीय समस्यायें उत्पन्न हो गई है। फलस्वरूप यहाँ की आबादी के लिए संतुलित आहार की व्यवस्था करना कठिन काम हो गया है।

आहार मानव जीवन की तीन मूल आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान में से प्रथम एवं सर्वाधिक प्रमुख है। इसके द्वारा मनुष्य के लिए शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि जैसे महत्वपूर्ण काम निष्पन्न होते हैं। यह शरीर की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह पेट भरने पर मिलने वाले एक विशेष प्रकार के संतोष की अनुभूति कराता है। सामूहिक भोज–भात के माध्यम से आहार व्यक्ति और समाज के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित करता है।[1]

भोजन हमारे जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक महत्वपूर्ण

आवश्यकता है। बिना भोजन के व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। एक बार भोजन करने के कुछ समय पश्चात पुनः भूख लगने लगती है जिसे केवल भोजन द्वारा ही संतुष्ट किया जा सकता है। भोजन व्यक्ति को न केवल जीवित रखने के लिए आवश्यक है वरन् व्यक्ति को स्वस्थ रखने के अतिरिक्त वह उसे कार्य करने की शक्ति भी प्रदान करता है।[2] प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए आहार की आवश्यकता होती है। मनुष्य का आहार ऐसा होना चाहिए कि वह शरीर की न्यूनतम पोषण आवश्यकता पूर्ण कर सके।[3] सामान्यतः हम जो भोजन ग्रहण करते हैं, वह हमारे व्यक्तित्व का भी परिचायक होता है। भोजन द्वारा हमारे धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भी जानकारी मिलती है। यह हमारी पसन्द एवं नापसन्द, आहारीय आदतों एवं आसक्तियों को भी दर्शाता है। साथ ही साथ हम जिस वातावरण एवं परिस्थितियों में रह रहे होते हैं उससे हमारा भोजन जुड़ा हुआ होता है।

अतः पोषण समस्याओं, विशेषकर भारतीय पोषण समस्याओं पर विचार करने के लिए पोषण के उचित विभिन्न पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है। भारत जैसे विशाल एवं विभिन्न धर्मावलम्बी जनसंख्या वाले देश में पोषण समस्याओं की अधिकता है। वैसे पोषण की अधिकांश समस्यायें राष्ट्र की आर्थिक स्थिति तथा आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन–यापन करता है। गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग यदि प्रतिदिन एक बार भी पेट भर भोजन प्राप्त कर लेते हैं तो यह उनके लिए सौभाग्य की बात होती है। गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाले लगभग शत–प्रतिशत लोग कुपोषण के शिकार होते हैं। ऐसे लोगों का भोजन प्रायः दूसरे की दया पर निर्भर करता है जिसके कारण ये कभी सन्तुलित आहार जैसी किसी बात की कल्पना नहीं करते। अधिकांशतः जब जो मिले उसे खाकर भरपेट पानी पीकर ही अपना जीवन गुजर–बसर करते हैं। इनके भोजन की समस्या का निवारण

राज्यों एवं केन्द्र सरकार के द्वारा ही किया जा सकता है, परन्तु इसके लिए जरूरी है कि हमारा राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध एवं सम्पन्न हो जाय।

भारत में पोषण की समस्या का दूसरा पहलू निरक्षरता, अशिक्षा एवं अज्ञानता भी है, क्योंकि यहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग आज भी निरक्षर, अशिक्षित एवं अनभिज्ञ हैं तथा यह वर्ग जीवन में आहार के महत्त्व, संतुलित आहार के विभिन्न तत्त्व, वजन, शारीरिक डील–डौल, आदि के अनुसार संतुलित आहार के उन तत्त्वों की मात्रा आदि जैसे तथ्यों से अनभिज्ञ होता है। जब जो मिले, जितना मिले वही खा लो और सन्तोष करो– वाले सिद्धान्त पर चलने वाला यह वर्ग अनेक आहारीय समस्याओं से ग्रसित होता है तथा इन्हीं कारणों से इस वर्ग के लोग प्रायः आहारीय अभावजनित रोगों के शिकार होते रहते हैं। अतः इनके निराकरण हेतु यह आवश्यक है कि इनके बीच आहार एवं पोषण सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया जाय। क्योंकि व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है। पर्याप्त पोषण तथा स्वास्थ्य का निकट का सम्बन्ध है तथा पर्याप्त पोषण संतुलित आहार से मिलता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास के लिए उचित पोषण अनिवार्य होता है।

भारत में पोषण की समस्या का तीसरा पहलू यह है कि भोजन से सम्बन्धित गलत आदतों, भ्रान्तियों एवं आसक्तियों से जुड़े होने के कारण सम्पन्न परिवार के लोग आहार तथा पाचन सम्बन्धी रोगों एवं विकारों से ग्रस्त होते हैं। ये साधन सम्पन्न एवं शिक्षित होने के कारण जानते हैं कि ऐसा करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है परन्तु आदतन ऐसा करने के लिए मजबूर रहते हैं, जैसे बिस्तर पर चाय पीना, अत्यधिक शराब पीना, धूम्रपान करना आदि। यही नहीं हमारे देश में एक प्रमुख आहारीय समस्या अपमिश्रण की है। भारत में देशी घी में डालडा, दूध में पानी, अनाज में कंकड़–पत्थर, सरसो के तेल में रेपसीड आयल, गोल मिर्च में पपीते का बीज, जीरा में सोआ, चने के बेसन में मक्का एवं प्रतिबन्धित खेसारी का चूर्ण

आदि। भोज्य पदार्थों में मिलावट से अनेक हानियाँ होती हैं जिससे भोजन की पौष्टिकता कम होने के साथ ही साथ भोजन करने वाले का स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। यही नहीं भारत में आहारीय समस्या में कच्चे एवं पक्के खाद्य पदार्थों की बर्बादी भी शामिल है जो चूहों एवं कीड़ों द्वारा खेत में फसल को व्यापक पैमाने पर नुकसान पहुँचाने तथा खलिहान में गरीब किसानों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों से बचाव का समुचित उपाय न करने के कारण खाद्य पदार्थ व्यापक रूप से बर्बाद हो जाते हैं। भारत में ग्रामीण महिलाओं द्वारा खाना बनाने में प्राचीन विधियों को अपनाने तथा होटलों एवं सामूहिक भोज–भात आदि अवसरों पर भी खाद्य पदार्थों की बर्बादी होती है। उपरोक्त आहारीय समस्याओं के समुचित निराकरण द्वारा भी हम पोषण समस्याओं में कमी लाने के साथ ही देश को विकसित एवं समृद्ध बनाने में अपना योगदान कर सकते है।

ज्ञान–विज्ञान की उन्नति के साथ–साथ मनुष्य को यह स्पष्ट होता गया कि भोजन की आवश्यकता जीवित रहने मात्र के लिए नहीं है किन्तु यह भोजन उसकी भूख शान्त करने के साथ–साथ उसके शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है। इस क्षेत्र में हुए विभिन्न प्रयोगों, खोजों द्वारा आज हर उम्र, अवस्था, बीमारी के लिए अलग–अलग प्रकार के भोजन की व्यवस्था है जो उम्र, अवस्था, बीमारी के लिए आवश्यक है। हमारा भोजन हमारे शरीर निर्माण, शरीर को काम करने के लिए शक्ति देने तथा शरीर को सुरक्षा प्रदान करने, उसे स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है।[4] सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रत्येक प्राणी आहार प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है। पशु–पक्षी व अन्य जीव–जन्तु आहार केवल अपनी भूख शान्त करने के लिए करते हैं, जबकि मनुष्य जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, केवल भूख शान्ति तक ही सीमित नहीं रह सकता। उसे यह भी निर्णय करना होता है कि उसका आहार सभी अवयवों की असली भूख मिटाने में सक्षम है या नहीं अर्थात् उसका आहार सही मायने में उपयुक्त, पौष्टिक, सन्तुलित है या नहीं। यजुर्वेद के अनुसार हम सौ या सौ से

अधिक वर्ष तक जियें पर शारीरिक लाचारी के कारण दीन–हीन होकर किसी के आश्रित व अधीन रहकर नहीं बल्कि पूर्ण शक्ति एवं सामर्थ्य के साथ स्वावलम्बी बनकर सौ या सौ से अधिक वर्षों तक जियें। गीता में ऐसा कहा गया है कि जीवन के अन्तिम क्षण तक स्वावलम्बी बनकर कार्य करते हुए जीवित रहें।

आज भोजन सम्बन्धी यह जानकारी आहार एवं पोषण विज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक अध्ययन से हम पाते हैं कि पहले भोजन सम्बन्धी अध्ययन, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान या भौतिक विज्ञान में पाते हैं, क्योंकि पहले व्यक्ति केवल अपना पेट भरने के लिए भोजन करता था, उसके लिए अलग से कोई विशिष्ट अध्ययन की आवश्यकता नहीं समझता था। परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सामान्य व्यक्ति में भोजन के प्रति कुछ जागरूकता देखने में आयी और आहार एवं पोषण सम्बन्धी अध्ययन की तरफ झुकाव बढ़ा। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी आहार एवं औषधी पर अनेक लेख एवं प्रमाण मिलते हैं परन्तु शिक्षा का प्रचार–प्रसार न होने के कारण भारत का आम नागरिक पोषण एवं पौष्टिक तत्त्वों की जानकारी से अनभिज्ञ ही रहे। मिस्र के विद्वानों ने भी इस विषय पर अध्ययन किया है जो वहाँ की पुरानी पत्थर की शिलाओं पर खुदे हैं। इन लेखों से स्पष्ट होता है कि भिन्न–भिन्न बीमारियों के उपचार में भोजन का क्या महत्त्व एवं स्थान है?

हमारा उचित पोषण हो इसलिए आवश्यक है कि हमें उत्तम एवं पौष्टिक भोजन प्राप्त हो। पोषण विज्ञान से परिचित व्यक्ति आज भी पौष्टिकता का अर्थ भोजन की अधिक मात्रा ही समझते हैं जबकि पौष्टिकता का वास्तविक अर्थ भोजन की अधिक मात्रा नहीं बल्कि भोज्य पदार्थों में पायी जाने वाली पौष्टिक तत्त्वों की मात्रा से है। इन पौष्टिक तत्त्वों की आवश्कता प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग–अलग मात्रा में होती है।

हमारे भोजन की पौष्टिकता या यूँ कहें पौष्टिक भोजन का सम्बन्ध

केवल हमारे शरीर के शरीरिक विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य से ही नहीं है बल्कि इसके साथ–साथ इसका सम्बन्ध हमारे मानसिक विकास तथा मानसिक स्वास्थ्य से भी है, क्योंकि स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही निवास करता है।[5] कुछ विचारकों की यह धारणा है कि बालक या बालिका के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही उसके सामाजिक, नैतिक, संवेगात्मक तथा सांवेदिक अनुभूतियों का स्वास्थ्य निर्भर होता है और उचित शारीरिक स्वास्थ्य उचित पोषण पर निर्भर करता है। प्रायः यह देखा गया है कि जो किशोरियाँ निरन्तर बीमारी के कारण क्षीणकाय हो जाती है, वे अन्य किशोरियों के सम्पर्क में कम आती है तथा उनका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है।

शारीरिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति के शारीरिक अंगों में होने वाली वृद्धि तथा उसके शरीर के आकार प्रकार का अध्ययन किया जाता है, मुख्य रूप से शरीर की लम्बाई, वजन, विभिन्न शारीरिक अंगों का अनुपात, हड्डियों के विकास, मांसपेशियों के विकास, स्नायु मण्डल के विकास, आन्तरिक अवयवों के विकास तथा सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य आदि का अध्ययन शारीरिक विकास के अन्तर्गत किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त उन तत्त्वों का भी अध्ययन किया जाता है जो शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। किशोरियों का सामाजिक विकास बहुत कुछ उनके स्वास्थ्य और शारीरिक रचना पर निर्भर करता है तथा उनका उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक रचना उनके द्वारा लिए जाने वाले आहार से प्राप्त उचित पोषण पर निर्भर करता है। यदि पोषण में जरा सी भी असावधानी हुई तो वे पोषणात्मक समस्या की शिकार हो जाती हैं और उनका स्वास्थ्य स्तर गिर जाता है तथा शारीरिक विकास भी बाधित होता है। प्रायः यह देखा गया है कि अस्वस्थ्य, कुरूप और कुंठित विकास वाली किशोरियों का सामाजिक विकास अधिक सामान्य रूप से होता है। अस्वस्थ किशोरियाँ स्वस्थ किशोरियों के समान खेलने–कूदने का पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं कर पातीं तथा कुछ स्वस्थ किशोरियाँ अस्वस्थ किशोरियों के साथ खेलना भी पसन्द नहीं करती। कुरूप, भद्दे, गूँगे, अंधे और अपाहिज किशोरियों की

शक्ल–सूरत दूसरों को न केवल अप्रिय ही लगती है, बल्कि उनके माता–पिता भी उन पर कम ध्यान देते हैं और इस प्रकार अपने लाड़–प्यार एवं दुलार का पात्र उन्हें नहीं बना पाते। ऐसे अस्वस्थ एवं कुरूप किशोरियाँ धीरे–धीरे अपनी कमियों से अवगत हो जाती हैं और उनका स्वभाव अन्तर्मुखी हो जाता है। अतः शारीरिक रूप से अस्वस्थ एवं पोषणात्मक समस्या की शिकार किशोरियों के अन्दर नेतृत्व, सहकारिता, मित्रता और आत्म प्रदर्शन के सामाजिक लक्षण बहुत अधिक नहीं विकसित हो पाते हैं।

भारत की स्वतंत्रता के 60 वर्ष बाद भी बच्चों एवं किशोरियों खासकर गर्भवती महिलाओं को कुपोषण से नहीं बचा पाये हैं। इस सम्बन्ध में प्रयास किये गये लेकिन संतोषजनक परिणाम नहीं मिल सका है। हालत यह है कि आज भारतीय किशोर एवं किशोरियों का पोषण स्तर विश्व में सबसे कम है। हिन्दुस्तान समाचार पत्र में 25 जुलाई 2004 को प्रकाशित एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 1000 में 145 बच्चे अपनी पाँचवीं वर्षगांठ मनाने से पहले ही दम तोड़ देते है। विश्व में कुपोषण से ग्रस्त 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे सिर्फ भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में है। यह शर्म की बात है कि यह संख्या अफ्रीका के गरीब देशों से भी अधिक है। चूँकि बाल–कुपोषण का सीधा संबंध माता के स्वास्थ्य से जुड़ा है, इसलिए भारत के लगभग एक तिहाई बच्चे सामान्य से कम वजन के होते हैं। जब महिलायें बार–बार गर्भधारण को बाध्य होती हों और बचपन, किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में लगातार उपेक्षा और कुपोषण की शिकार होती हैं तो जाहिर है कि उनके बच्चे औसत से कम वजन के पैदा होंगे। वे भी स्तनपान के साथ पौष्टिक खुराक न मिलने के कारण छह महीने से दो साल के बीच धीरे–धीरे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। जिस तरह माँ और शिशु के स्वास्थ्य में सम्बन्ध है, उसी तरह माँ और शिशु के मृत्युदर में भी सम्बन्ध है। ये दोनों एक दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि अब शिशु मृत्युदर को कुपोषण का सूचकांक माना जाने लगा है। कुपोषित बच्चों का बाजार सम्बन्धी एक

सर्वेक्षण के अध्ययन से यह हैरानी होती है कि आज भी विश्व के 8.40 करोड़ लोग ऐसे है, जिन्हें पर्याप्त भोजन, नसीब नहीं होता। दो अरब से ज्यादा लोग ऐसा भोजन खाने को मजबूर है, जिसमें वह विटामिन और खनिज नहीं होते जो आमतौर पर सामान्य विकास के लिए जरूरी है। खराब भोजन और गंदें पानी से लाखों लोग बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। जाहिर है कि कुपोषण का सीधा असर आने वाली पीढ़ियों पर पड़ता है। बच्चे कमजोर होंगे तो कल के युवा कमजोर होंगे और कमजोर लोगों के सहारे राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं है। इसलिए समाज एवं राष्ट्र का विकास ठीक तरीके से तभी होगा जब किशोरियों एवं महिलाओं का स्वास्थ्य अच्छा होगा।

किशोरी एक बढ़ते हुए पौधे की तरह है। पौधा जब उगकर पेड़ बनता है, फल–फूल और छाया देता है तो इसके लिए पौधे को सही मात्रा में खाद, पानी, धूप और देखभाल की जरूरत होती है। ठीक इसी तरह लड़की(किशोरी) भी बड़ी होकर समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए और अपने पैरों पर खड़े होने के लिए हर लड़की को भरपेट पौष्टिक भोजन, स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा की जरूरत होती है। साथ ही उसे आपके प्यार और स्नेह की भी आवश्यकता होती है।

जन्म से लेकर किशोरावस्था और फिर मां बनने तक उसके पोषाहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि उचित पोषाहार के अभाव में किशोरी कमजोर हो जाती है तथा उसका शारीरिक, मानसिक विकास बाधित होता है। हमारे सामाजिक ढाँचे में ज्यादातर परिवारों में पिता और बेटे के खा लेने के बाद ही माँ और बेटी बचा हुआ खाना खाती हैं। इस कारण अक्सर इनके खाने में अनाज, दाल, सब्जी आदि की मात्रा उनकी शारीरिक जरूरतों से कम होती है। इसके अलावा अक्सर घर में पर्याप्त मात्रा में दूध, दही होने पर भी लड़कियाँ को खाने के लिए नहीं दिया जाता है जबकि लड़कियों को घर और बाहर दोनों के काम करने होते हैं। ज्यादा काम

करने के लिए उन्हें ज्यादा शक्ति और पोषण चाहिए लेकिन अक्सर उन्हें अपने भोजन से यह पूर्ण रूप से नहीं मिल पाता है और परिणामस्वरूप वह कुपोषण की शिकार हो जाती हैं। किशोरियों के शारीरिक विकास खासतौर से लम्बाई बढ़ने का महत्वपूर्ण समय होता है 10 से 18 वर्ष की उम्र। किशोरी के तेजी से बढ़ने का दूसरा और आखिरी मौका होता है। तेज रफ्तार से बढ़ने का पहला मौका जन्म से 5 साल तक होता है। किशोरावस्था में 'पूरक वृद्धि' हो सकती है। मतलब अगर लड़की की लम्बाई में कोई कमी रह गई हो तो 10 से 18 साल के बीच यह कमी कुछ हद तक पूरी की जा सकती है। इसलिए इस अवस्था में किशोरी को विशेष देलभाल की जरूरत होती है तथा किशोरी के आहार में अनाज, दालें, सब्जियाँ, फल, दूध, दही आदि शामिल करना चाहिए।

यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में 10 में से केवल एक ही बच्चा मुश्किल से किशोर हो पाता है। भारत में 8 नवजात शिशुओं में से केवल एक ही ठीक से पल पाता है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट और न्यूट्रिशन डॉ0 गोपालन के अनुसार 1983 में पैदा हुए 230 लाख बच्चों में से 30 लाख एक साल की उम्र से पूर्व, 10 लाख 5 साल की उम्र के पूर्व मृत्यु के शिकार हो गये। शेष 1 करोड़ 90 लाख शारीरिक व मानसिक रूप से अविकसित रहे। 70 लाख किशोर, किशोरियाँ कुपाषण के शिकार हुए। मात्र 30 लाख ही स्वस्थ नागरिक बन पाये। अतः इन सब तथ्यों से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आज का शिशु ही कल के देश व विश्व का नागरिक है और इनके समुचित विकास पर ही देश की उन्नति निर्भर करती है।

पोषण के सम्बन्ध में बहुसंख्य अध्ययन हुए हैं। हंस(1990) ने किशोरियों का एक सर्वेक्षण कर गरीबी, अशिक्षा एवं पोषण की कमी को तमाम समस्याओं का आधार पाया है, इसी तरह अल्मेडा एवं उनके सहयोगियों(2001) ने जन्मोत्तर प्रोटीन

कमी का प्रभाव बालक के खेलकूद, कौशल एवं सामाजिक व्यवहार पर पाया है। इनके अनुसार प्रोटीन की कमी का प्रभाव बालक के खेलकूद, कौशल एवं सामाजिक व्यवहार पर पाया है। इनके अनुसार प्रोटीन की कमी से खेलकूद, कौशल एवं सामाजिक व्यवहार का सामाजिकता के अधिगम में कमी आती है। इसी प्रकार विटामिन की कमी का प्रभाव भी शारीरिक विकास पर शोध के दौरान देखा गया (फेराज एवं अन्य 2002, भाष्करन् एवं अन्य 2002, के0 डी0 ब्लाकफैन एवं अन्य, 1933, रस्सेक 1973 इत्यादि)। उमापति एवं अन्य(2002) द्वारा शारीरिक विकास पर पोषण की न्यूनता के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। परन्तु आज तक जो भी अध्ययन पोषण की कमी या अनुपयुक्तता के संदर्भ में किये गये हैं, उनमें से अधिकांशतः शारीरिक विकास–विकृति के सम्बन्ध में हैं। मनोवैज्ञानिक विकास के संबंध में बहुत अध्ययन नहीं हुए है। इसलिए इस अध्ययन में शारीरिक विकास एवं व्यावहारिक विकास दोनों ही आयामों के संदर्भ में कुपोषण का अध्ययन किया जायेगा। इसमें व्यावहारिक विकास के दो पक्ष(आयाम) सामाजिक एवं नैतिक व्यवहार के विकास को अध्ययन में शामिल किया गया है। देश में पोषण स्तर को सुधारने के लिए तमाम सरकारी एवं गैर सरकारी अभिकरण क्रियाशील हैं और इनकी क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में बहुत सुधार हुए हैं, परन्तु आज भी पोषण के सम्बन्ध में माता–पिता तथा समाज को शिक्षित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ऊषा वर्मा, आहार, पोषण एवं आहारिकी, पृ0 9
2. बी0 डी0 हरपालानी, आहार विज्ञान एवं उपचारात्मक पोषण, पृ0 1
3. डॉ0 अनीता सिंह, स्वास्थ्य एवं आरोग्य शास्त्र, पृ0 6
4. श्रीमती भूपिन्दर कौर बख्शी, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ0 1
5. बी0 के0 बख्शी–आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ0 16

◆◆◆